नियमसार, जीव अधिकार १३ वीं गाथा।

तह दंसणउवओगो ससहावेदरवियप्पदो दुविहो।
केवलमिंदियरहियं असहायं तं सहावमिदि भणिदं।।१३।।

दर्शनपयोग स्वभाव और विभाव दो विधि जानिये।
इन्द्रिय-रहित, असहाय, केवल, दृग्स्वभाविक मानिये॥१३॥

क्या अधिकार चलता है? उपयोग। यह आत्मा जो वस्तु है, उसका ज्ञान और दर्शन उपयोग त्रिकाली स्वभाव और वर्तमान उसकी दशा का स्वरूप चलता है। ज्ञान की व्याख्या आ गयी। अब दर्शन की।

टीका :— यह दर्शनोपयोग के स्वरूप का कथन है। सामान्यरूप से वस्तु को देखे, ऐसे भाव को दर्शनोपयोग कहते हैं। सूक्ष्म है। **जिस प्रकार ज्ञानोपयोग बहुविध भेदोंवाला है,...** ज्ञान के भी बहुत भेद किये थे—एक, कारणस्वरूपज्ञान त्रिकाल; एक, कार्यस्वरूपज्ञान स्वभावज्ञान वर्तमान; और उसमें भी मतिश्रुतादि के बहुत भेद (कहे थे)। चार ज्ञान विभाव, केवलज्ञान स्वभाव—ऐसे बहुत भेद किये थे। वैसे ही यह दर्शनोपयोग भी वैसे बहुत भेदवाला है। इतने अधिक नहीं, परन्तु भेदवाला है।

स्वभावदर्शनोपयोग और विभावदर्शनोपयोग। स्वभावदर्शनोपयोग भी दो प्रकार का है—कारणस्वभावदर्शनोपयोग और कार्यस्वभावदर्शनोपयोग। क्या कहते हैं?

---

१. तीर्थंकरपरमदेव शुद्धसद्भूतव्यवहारनयस्वरूप हैं, कि जो शुद्धसद्भूतव्यवहारनय सादि-अनन्त, अमूर्तिक और अतीन्द्रियस्वभाववाला है।

आत्मा में एक दर्शन नाम का स्वभाव-उपयोग त्रिकाल है। आत्मा वस्तु है, उसमें दर्शन नाम का उपयोग त्रिकाल है, उसे यहाँ कारणस्वभावदर्शन-उपयोग कहते हैं और वर्तमान उसकी कार्य / दशा आवे; स्वभावदर्शन, कारण त्रिकाल उपयोग, उसमें एकाग्र होकर जो कार्यदर्शन-उपयोग स्वभाव, केवलदर्शन को यहाँ कार्यस्वभाव-उपयोग कहा जाता है। यह सब सूक्ष्म विषय है। जिसे अभ्यास न हो, उसे यह सब सूक्ष्म लगता है।

अब कारणस्वभावदर्शनोपयोग को यहाँ कारणदृष्टिरूप से वर्णन करते हैं। आत्मा एक वस्तु है, पदार्थ। उसमें त्रिकाली सामान्य दर्शनोपयोग को यहाँ कारणदृष्टि भी कहते हैं। कारणदर्शनोपयोग भी कहते हैं और उसे कारणदृष्टि भी कहते हैं। वह **कारणदृष्टि...** दृष्टि नीचे है। ***दृष्टि=दर्शन (दर्शन अथवा दृष्टि के दो अर्थ हैं : १. सामान्य प्रतिभास,...)*** यह दर्शन-उपयोग। सामान्य, आत्मा में सामान्यरूप से अर्थात् भेद पाड़े बिना देखने का एक उपयोग आत्मा का त्रिकाल है, उसे सामान्यदर्शनोपयोग कहते हैं, उसे ही उसे श्रद्धा की अपेक्षा से दृष्टि भी कहते हैं। कारणदृष्टि, कारणदर्शनोपयोग, कारणश्रद्धा। इतने शब्द उसमें प्रयोग किये हैं। ***(२. श्रद्धा। जहाँ जो अर्थ घटित होता हो, वहाँ वह अर्थ समझना। दोनों अर्थ गर्भित हों, वहाँ दोनों समझना।)*** इसमें दोनों हैं। कारणदृष्टि, स्वरूपश्रद्धानमात्र कहेंगे। अथवा त्रिकाल कारणदर्शनोपयोग ध्रुवरूप से। आत्मा... यह सब सूक्ष्म बात है। यह उस खजूर जैसी नहीं कि एकदम समझ में आ जाये। मनुभाई!

आत्मा, यह वस्तु है आत्मा, उसमें उसका त्रिकाली दर्शनोपयोगस्वभाव है। उसे कारणदृष्टि भी कहते हैं, स्वरूपश्रद्धान भी कहते हैं। त्रिकाली, हों! उसे कारणदर्शनोपयोग भी कहते हैं। दोनों प्रकार से कहा जाता है। वह **सदा पावनरूप और औदयिकादि चार विभावस्वभाव परभावों को अगोचर....** है। सूक्ष्म बात है। भगवान आत्मा में त्रिकाल कारणदृष्टि अथवा कारणसामान्य उपयोगदर्शन अथवा स्वरूपश्रद्धान। वस्तु त्रिकाल है, उसके स्वरूप की श्रद्धा त्रिकाल। पर्याय नहीं। कहते हैं कि वह कारणदृष्टि, कारणदर्शन-उपयोग अथवा स्वरूपश्रद्धान स्वरूप वस्तु। इन चार विभावस्वभाव परभाव को अगम्य है।

वस्तु जो आत्मा है, भगवान आत्मा में जो दर्शनोपयोग अथवा कारणदृष्टि त्रिकाल है, वह उदय—दया, दान, व्रत, भक्ति का विकल्प है, वह उदयभाव है, उसे भी वह दर्शन-उपयोग शाश्वत् अथवा कारणदृष्टि त्रिकाल उससे अगम्य है। उससे ज्ञात हो, ऐसा नहीं है।

समझ में आया ? ऐसे उपशम। दर्शन, चारित्र आदि का उपशम होता है न ? उस उपशमभाव से भी, उसका आश्रय करने से अगम्य है, मूल तो ऐसा कहना है। उपशमभाव से अगम्य है, इसका अर्थ ? कि उपशमभाव का आश्रय करने से यह भाव प्रगट होता है, ऐसा नहीं है। यह भाव समझ में आये, ऐसा नहीं है, ऐसा कहते हैं। सूक्ष्म है, पोपटभाई ! बाहर में तो सब ऐसा का ऐसा स्थूल चला हो। पुण्य हो उसके कारण पैसा-वैसा ढगला धन हो, उसे जगत में चतुर कहा जाता है। जगत में, हों ! यह वस्तु अलग है। आत्मा को पहिचानना और आत्मज्ञान, वही मोक्ष का मार्ग है। वही धर्म और सुख के पन्थ में आने का मार्ग है। आहा..हा.. !

यह कहते हैं कि आत्मा कारणदृष्टि अथवा कारणदर्शनोपयोग स्वरूपश्रद्धानस्वरूप सब इसने साथ में लिया है। वह उदय अर्थात् रागादि के विकल्प से अगम्य है। उपशम के आश्रय से भी अगम्य है। चार ज्ञान आदि का क्षयोपशम जो है, उससे भी अगम्य है। उसका आश्रय करने से भी समझ में नहीं आता। वैसे ही क्षायिकभाव। इन चार को विभावस्वभाव कहा है, क्योंकि जिसमें वि—विशेष विशेषपना आता है और जिसमें पर की कोई अभाव आदि की अपेक्षा आती है, इससे उदय, उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक चार को विभावस्वभाव-परभाव कहा है। है न ? विभावस्वभाव परभाव। आज का विषय सूक्ष्म है। आज रविवार है न ! रविवार आता है, इसलिए ये भावनगरवाले आते हैं, तब सूक्ष्म आता है।

आत्मा सत्वस्तु सत् है, है। उसमें उसका उपयोग अर्थात् गुण, दर्शनोपयोग सामान्यरूप से जो देखने की शक्ति अथवा कारणदृष्टि, वह सम्यग्दर्शन, वह कारणदृष्टि अन्दर वस्तु त्रिकाल, हों ! अथवा वह स्वरूपश्रद्धान। त्रिकाली वस्तु है, उसके स्वरूप की श्रद्धामात्र ध्रुव। घर में मानो पढ़ने का समय मिलता नहीं। मनुभाई ! किसी दिन ऐसा सुनने को मिले, उसमें (ऐसी सूक्ष्म बात आवे)। कहो, समझ में आया ?

जिसे आत्मा का हित करना है, सुखी होना हो, उसे किस प्रकार सुखी हुआ जाये और हित हो ? कि जो आत्मा वस्तु है, उसमें त्रिकाली दर्शनोपयोग है या त्रिकाली स्वरूप -श्रद्धान या कारणदृष्टि जो त्रिकाली है, उसका आश्रय करे तो उसे कल्याण और सुख हो, तो उसे लाभ हो। क्या कहा, समझ में आया ?

चार भाव वर्तमान प्रगट है। पुण्य-पाप का विकार, उपशमसमकित और उपशमचारित्र या क्षयोपशमज्ञान या क्षयोपशमचारित्र; क्षायिकज्ञान या क्षायिकचारित्र। वे सब उदय,

उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक चार भाव हैं। उन चार भाव का आश्रय करने से स्वरूप का लाभ नहीं होता, धर्म का लाभ नहीं होता। आहा..हा..! कहो, भीखाभाई! परन्तु कहाँ गये? इसमें देव-गुरु तो कहीं रह गये।

मुमुक्षु : बाजू में रख दिये।

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या कहा यह? बाजू में रख दिये। आहा..हा..! तुझमें ऐसी खान है, कहते हैं। अन्दर स्वरूपश्रद्धान नाम का त्रिकाल एक गुण है - श्रद्धा नाम का गुण त्रिकाल है अथवा कारणदृष्टि नाम का गुण है अथवा दर्शनोपयोग कारणरूप वह त्रिकाल गुण है। आहा..हा..! उसका लाभ यह जीव का परमस्वभावभाव है। आत्मा वस्तु है, उसका परमस्वभावभाव, कारणदृष्टि, कारण-उपयोग, स्वरूपश्रद्धान, यह उसका शाश्वत् ध्रुवस्वभाव है। इसका आश्रय करे तो इसे सम्यग्दर्शन और आनन्द की प्राप्ति हो। समझ में आया? आहा..हा..! क्योंकि चार तो विशेष अपेक्षित भाव हैं। नीचे कहा है, देखो!

विभाव=विशेषभाव, अपेक्षितभाव। (औदयिक, औपशमिक, क्षायोपशमिक, और क्षायिक—ये चार भाव, अपेक्षितभाव होने से उन्हें विभावस्वभाव परभाव कहा है।)... उन्हें यहाँ विभावस्वभाव कहा, उन्हें ही पहले केवलज्ञान को स्वभावभाव भी कहा था। केवलज्ञान जो प्रगट होता है, उसे स्वभाव-उपयोग कहा था। केवलदर्शन को भी स्वभाव-उपयोग इसमें कहा है, तथापि यहाँ विशेष भाव है, इस अपेक्षा से उसे विभावस्वभाव कहने में आता है। समझ में आया? नहीं समझ में आया। कहा न?

आत्मा में जो त्रिकाल ज्ञानस्वभाव है, उसे तो कारण ज्ञानोपयोग कहते हैं। अब उसके आश्रय से हुआ केवलज्ञान कार्यस्वभाव-उपयोग, केवलज्ञान को वहाँ स्वभाव-उपयोग कहा था, उसे यहाँ विभावस्वभाव कहा है और परभाव कहा है। त्रिकाली परमस्वभाव की अपेक्षा से विशेषभाव, अपेक्षितभाव अथवा परभाव (कहा है)। सेठी यह पढ़ा है या नहीं? तुम्हारे घर से तो किया है यह। हिन्दी कराया है। आहा..हा..!

फिर से। यह आत्मा वस्तु है। शरीर, वाणी वह तो जड़ है। वह कहीं आत्मा में नहीं और आत्मा के नहीं। बराबर है? इस आत्मा के नहीं? खजूर के थैले (आत्मा के नहीं?) यहाँ कहते हैं कि जो यह अन्दर कर्म है, वह आत्मा में नहीं, आत्मा के नहीं। बराबर है? अब कहते हैं, उसकी पर्याय में / अवस्था में / हालत में चार भाव हैं। अनादि से एक

उदयभाव है, अनादि से क्षयोपशमभाव भी है। धर्म पावे तब उपशम, क्षयोपशम और क्षायिकभाव होता है। ऐसे चार प्रकार इसकी दशा में है। वह दशा में है, उसमें जो केवलज्ञान का उपयोग है, उसे स्वभाव-उपयोग कहा था। इसे यहाँ विभाव-उपयोग कहकर परभाव कहा है। त्रिकाल ज्ञायकस्वभाव, ज्ञानोपयोग त्रिकाल की अपेक्षा से वर्तमान प्रगट हुई केवलज्ञान की दशारूपी भाव को अपेक्षित भाव गिनकर, विशेषभाव गिनकर, विभाव गिनकर परभाव कहा है।

दर्शनोपयोग भी ऐसा कहा है। इसी गाथा में दर्शनस्वभाव-उपयोग कहा है। त्रिकाल एक दर्शनस्वभाव-उपयोग, त्रिकाली और उसमें से प्रगट हुआ केवल दर्शनोपयोग कार्य है। वह कार्य-उपयोग जो है, उसे स्वभाव-उपयोग कहा है, तथापि यहाँ उसे विभाव अपेक्षा लेकर, अपेक्षितभाव गिनकर, विशेषभाव गिनकर उसे विभाव-स्वभाव परभाव कहने में आता है। समझ में आया ? यह नियमसार है। घर में है न हिम्मतभाई ? पढ़ा है ? .....उसमें नहीं। ....घर में पुस्तक है या नहीं ? घर में पैसा है, वे खर्च करते हैं या नहीं ? पुस्तक है, उसे प्रयोग करते हैं या नहीं ? ऐसा कहा। देखो ! यह लेख। आहा..हा.. !

तेरी सम्पत्ति में-पूँजी में क्या है और पूँजी में से प्रगट क्या होता है ? यह बात है। तेरी पूँजी में अन्दर में कारणज्ञानोपयोग त्रिकाल पड़ा है और तेरी पूँजी में कारणदर्शनोपयोग त्रिकाल पड़ा है। तेरी पूँजी में कारणदृष्टि स्वरूपश्रद्धानमात्र भाव त्रिकाल पड़ा है। अब उसमें से प्रगट होने के लिये... वह तो शक्तिरूप है, ध्रुवरूप है, अब प्रगट धर्म होने के लिये कहते हैं कि इस पर्याय में जो चार भाव हैं, उनका आश्रय करने से धर्म की पर्याय प्रगट नहीं होती। धर्म जो प्रगट हुआ हो, उसके आश्रय से भी परमपारिणामिकस्वभाव जानने में नहीं आता। उसके आश्रय से, हों ! उससे होता है, वह अलग बात है। यह तो सब अटपटा जैसा है। आहा..हा.. !

कहते हैं, भाई ! तेरी रिद्धि, समृद्धि, चैतन्य की समृद्धि में अन्तर के दर्शनोपयोग और ज्ञानोपयोग आत्मा के, शक्ति के, ध्रुव में सामान्यरूप से (रहे हुए हैं)। ज्ञान सामान्य और दर्शन सामान्य अर्थात् पर्यायरहित ऐसा। ऐसा त्रिकालभाव पड़ा है, ऐसे कारणदृष्टि भी आत्मा में ध्रुवरूप से त्रिकाल पड़ी है और स्वरूपश्रद्धान, पूरे स्वरूप के श्रद्धानरूप अभेद ऐसी श्रद्धा भी त्रिकाल पड़ी है। समझ में आया ? उसे परमपारिणामिकस्वभावभाव कहने

में आता है और प्रगट हुए चार भाव को विभावस्वभाव परभाव कहने में आता है। पण्डितजी!

त्रिकाली ज्ञायकभाव, त्रिकाली दर्शनभाव, त्रिकाली स्वरूपश्रद्धानभाव, त्रिकाली कारणदृष्टिभाव, उस स्व परमस्वभाव की अपेक्षा से पर्याय में प्रगट हुए उदय, उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक को परभाव, परस्वभाव, विभावभाव कहने में आया है। आहा..हा..! समझ में आया? इन चार विभावस्वभाव परभावों को अगम्य है अर्थात् कि, देखो! नीचे लिखा है न (***चार विभावभावों का आश्रय करने से परमपारिणामिकभाव का आश्रय नहीं होता।***) (फुट)नोट में है। ***(परमपारिणामिकभाव का आश्रय करने से ही सम्यक्त्व से लेकर मोक्षदशा तक की दशाएँ प्राप्त होती हैं।)*** आहा..हा..! भगवान आत्मा अन्तर्मुख की शक्ति में ज्ञान, दर्शन, श्रद्धा इत्यादि कारणदृष्टि, वह शक्तिरूप जो ध्रुव है, वह परमस्वभावभाव है। उसका आश्रय करने से धर्म होता है।

सम्यक्त्व से लेकर केवलज्ञान आदि की पर्यायें उत्पन्न होती हैं, वह त्रिकाली स्वरूपश्रद्धा, कारणदृष्टि, दर्शनोपयोग और ज्ञानोपयोग के आश्रय से अन्तर में ध्रुव को अवलम्बन करने से। त्रिकाली शक्तिवाला तत्त्व की शक्ति का वर्णन है। उस त्रिकाली शक्ति का अवलम्बन करने से... फिर कोई शक्ति और शक्तिवान, ऐसा भेद वहाँ नहीं रहता। त्रिकाली शक्तिवान और शक्ति, उसका अन्तर आश्रय करने पर सम्यग्दर्शन-धर्म की पहली भूमिका प्रगट होती है। कहो, समझ में आया? वहाँ से लेकर मोक्षदशा, कैवल्यदशा वे सब दशाएँ, हालत-पर्यायें त्रिकाली वस्तु की शक्तियों में आश्रय करने से प्रगट होती हैं। निमित्त का राग का और निर्मल पर्याय क्षयोपशम आदि का आश्रय करने से सम्यग्दर्शन से लेकर केवलज्ञान उत्पन्न नहीं होता।

वह तो यह सब रात्रि को पूछे तो आयेगा या नहीं? उसमें सब आयेगा? हाँ किया। बहुत वैसी हाँ नहीं करते। हसमुखभाई! घर में रुपये कितने हैं, उसकी इसे खबर नहीं होगी? वह तो निश्चित होगी। आहा..हा..! उसे फिर रटना पड़ता होगा? एकदम कहे, भाई! मेरे लिये दूसरे भले इतने सोचें, परन्तु मेरे पास इतने तो हैं। आहा..हा..! इसी प्रकार यहाँ कहते हैं कि आत्मा में तेरे लिये दूसरे चाहे जैसा सोचे, परन्तु अन्दर में क्या है, उसकी तुझे खबर है? ऐसा कहते हैं।

अन्दर में त्रिकाली आनन्दकन्द भगवान आत्मा में यह कारणज्ञान, कारणदर्शन, कारणस्वरूपश्रद्धान, कारणदृष्टि ऐसा ध्रुवस्वभाव तुझमें—खान में—पड़ा है। ऐसी खान का आश्रय अन्तर्मुख (होकर) ले तो तुझे धर्म की पर्याय, चारित्र की पर्याय, केवलज्ञान की पर्याय, मोक्ष की पर्याय प्रगट होगी। व्यवहार से व्यवहार के कारण आश्रय नहीं होता, ऐसा इनकार किया है। क्षयोपशमज्ञान हुआ हो, क्षायिकसमकित हुआ हो तो उसके आश्रय से नयी पर्याय नहीं होती, ऐसा यहाँ कहते हैं। उसके बदले व्यवहार, दया, दान, व्रत, और कषाय की मन्दता से निश्चय प्रगट होता है, यह तो कहीं रह गया। आहा..हा..! अभी विधि की खबर नहीं होती। मार्ग की विधि क्या है? सुखी होने का पन्थ, उसकी विधि क्या है? यह सूक्ष्म है, हों मनीष! बहुत ध्यान रखे तो समझ में आये ऐसा है। लिखना चाहते हैं और आज सूक्ष्म है, आज सूक्ष्म। कहो, समझ में आया? आहा..हा..!

परभावों को अगोचर... ऐसे वापस अगम्य हैं। उसका अर्थ यह कि परभावों के आश्रय से वह होता नहीं। ऐसा उसका अर्थ है। अगम्य तो उपशमभाव को गम्य है, क्षयोपशमभाव और क्षायिकभाव को पारिणामिकभाव गम्य है। त्रिकालभाव उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक तो गम्य है परन्तु यहाँ अगम्य है, ऐसा कहने का आशय (यह है कि) उनके आश्रय से वह ज्ञात होता नहीं। समझ में आया? ऐसा सूक्ष्म किसने किया होगा? वस्तु का स्वरूप ही ऐसा है। उसमें किसने किया? सत् ही वह है।

वस्तु सत् है। आत्मा त्रिकाल सत् है, तो उसके कारण उपयोग और कारणदृष्टि वे भी त्रिकाल सत् हैं। उनमें से धर्म प्रगट करने के लिये अर्थात् ज्ञान का सम्यक् उपयोग प्रगट करने के लिये और दर्शन का उपयोग प्रगट करने के लिये, सम्यक्त्व प्रगट करने के लिये त्रिकाली, चार भाव से रहित **ऐसा सहज-परमपारिणामिकभावरूप जिसका स्वभाव है;...** यह जो कारण-उपयोग कहो, कारणदृष्टि कहो, स्वरूपश्रद्धान कहो, वह **कारणसमयसार स्वरूप है;...**

सहज-परमपारिणामिकभावरूप जिसका स्वभाव है;... त्रिकाली स्वभावभाव सहज वस्तु है, वैसे उसकी शक्तियाँ अर्थात् गुण भी ऐसे के ऐसे हैं। समझ में आया? **ऐसा सहज-परमपारिणामिकभावरूप...** यह परमपारिणामिक कौन सा? वह कारणदृष्टि, कारण-उपयोग, कारणज्ञान इत्यादि। यहाँ दर्शन की बात है। त्रिकालस्वरूपश्रद्धान वह सब

सहज-परमपारिणामिकभावरूप जिसका स्वभाव है;... भारी सूक्ष्म! ये दो भाई किसी दिन आते हैं, उसमें ऐसा सूक्ष्म आया। समझ में आया? उसमें मनुभाई बुद्धिवाले गिने जाते हैं। लौकिक में गिने जाते हैं, ऐसा कहा। कहो, समझ में आया इसमें? भाई! ऐसा धर्म गजब। वह तो कहे व्रत करना, तप करना, रोटियाँ न खाना, अपवास करना, जाओ (हो गया धर्म)। धूल में भी धर्म नहीं है। अब सुन न! अमुक यह मैंने त्याग किया, यह मैंने ग्रहण किया, यह मिथ्यात्व का पोषण है। पर्याय में इसे ग्रहण करूँ, इसे छोड़ूँ, यह लूँ और यह छोड़ूँ... आहा..हा..! अरे रे! यह तो विकल्प का भाव (है) और मानता है कि इससे मुझे लाभ। मिथ्यात्व को पोषण करता है। समझ में आया?

यहाँ तो भगवान आत्मा में जैसे प्रभु स्वयं अविनाशी अनादि है, वैसे उसमें अविनाशी कारणदर्शनोपयोग, अविनाशी स्वरूपश्रद्धान, अविनाशी कारणदृष्टि, वह आत्मा में त्रिकाल पड़ी है। वह **परमपारिणामिकभावरूप जिसका स्वभाव है;...** वे चार भाव हैं, वे तो पर्याय की बात है। यह चार त्रिकाल स्वभाव की बात है। आहा..हा..! समझ में आया? अन्तर भगवान का दरबार अलौकिक है, ऐसा कहते हैं परन्तु कभी सुना नहीं। आहा..हा..! तेरे अन्तर दरबार में कारणदृष्टि, कारणदर्शनोपयोग और स्वरूपश्रद्धा परमसहजस्वभावरूप पड़े हैं।

जो कारणसमयसार स्वरूप है;... लो। कारण आत्मस्वरूप है। **कारणसमयसार स्वरूप है;...** वह दर्शनोपयोग त्रिकाल और कारणदृष्टि त्रिकाल या स्वरूपश्रद्धान, वह था शक्ति और गुण का वर्णन परन्तु कहते हैं कि वह **कारणसमयसार स्वरूप है;...** अभेद वर्णन किया। ये तीनों द्रव्यस्वरूप ही हैं, द्रव्यस्वरूप ही हैं। समझ में आया? यह क्या कहा? **ऐसा सहज-परमपारिणामिकभावरूप जिसका स्वभाव है; जो कारणसमयसार स्वरूप है;...** वस्तु भगवान आत्मा इन गुण के भेद से बतलाते हैं, तथापि ये गुण सब कारणस्वरूप परमात्मा आत्मा के स्वरूप ही ये सब हैं। भेद नहीं हैं। समझ में आया?

कारणसमयसार स्वरूप है;... आहा..हा..! कौन? यह आत्मा जैसे अविनाशी सत् है.. है.. है.. है.. है.. है.. वैसे उसमें दर्शन, कारणदृष्टि अथवा स्वरूपश्रद्धान, वे भी परमस्वभावभाव से है.. है.. है.. है.. है.. है.. है.. और उन सबको कारणसमयसारस्वरूप भी कहते हैं। समझ में आया? **निरावरण जिसका स्वभाव है;...** भगवान आत्मा जैसे वस्तु

है, उसका जैसे आवरणरहित निरावरणस्वभाव है, वैसे उसका त्रिकाल दर्शनोपयोग, कारणदृष्टि अथवा स्वरूपश्रद्धान निरावरणीय वस्तु त्रिकाल पड़ी है। समझ में आया? पर्याय की अपेक्षा से बात नहीं है। यह गुण जो कारणसमयसारस्वरूप है, वह त्रिकाल निरावरण जिसका स्वभाव है। आहा..हा..!

जो निज स्वभावसत्तामात्र है;... जो निज स्वभावसत्तामात्र है। कारणदर्शनोपयोग, कारणदृष्टि अथवा स्वरूपश्रद्धान वह निज स्वभावसत्ता—अपने स्वभाव का अस्तित्वरूप है। आत्मा में निज स्वभावसत्ता अस्तित्वरूप से है। पहले ऐसा कहीं आया था। सम्प्रदाय है न? इन चेतनजी ने कारणपर्याय का पूछा था न? यह वहाँ कहीं था? क्या हो? लोगों को अपना पक्ष छोड़ना नहीं। आहा..हा..! यह सब पहरावणी बताते हैं। तेरे घर में क्या है? समझ में आया?

कहते हैं कि वह तो त्रिकाल निरावरणस्वभाव है। वस्तु जैसे निरावरण है, वैसे उसका शक्ति स्वभाव निरावरण है। निज स्वभावसत्तामात्र है। भगवान आत्मा जैसे है, वैसे यह शक्तिरूप निजस्वभावसत्ता त्रिकाल है। यह पर्याय की बात नहीं, अवस्था की बात नहीं। आहा..हा..! **जो परमचैतन्य सामान्यस्वरूप है;...** जो परमचैतन्य सामान्य, अभी दर्शन की व्याख्या है न? ऐसा। उस दर्शन के साथ कारणदृष्टि आवे और स्वरूपश्रद्धान सब उसमें आवे। **परमचैतन्य सामान्यस्वरूप है;...** परमचैतन्य सामान्यस्वरूप अन्दर है। आहा..! भाषा ही पकड़ना कठिन पड़े। समझ में आया? **जो अकृत्रिम परम स्व-स्वरूप में अविचलस्थितिमय शुद्धचारित्रस्वरूप है;...** त्रिकाल। अकृत्रिम-नया नहीं किया हुआ, ऐसा परमस्वस्वरूप में परमस्वस्वरूप अन्दर का। चलित न हो, ऐसी स्थितिमय शुद्धचारित्रस्वरूप वह सब है। त्रिकाल, हों! भारी गाथा है।

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : सब साथ में ही है न। इकट्ठे ही हैं न! भिन्न कहाँ हैं। अभेद वर्णन करना है न।

जो अकृत्रिम परम स्व-स्वरूप में अविचल... कभी चलित न हो, ऐसा चारित्र सुचारित्र ध्रुवस्वभाव है। वह सत्ता-निजसत्तामात्र कारणदृष्टि में, कारण-उपयोग में यह सब पड़ा है। आहा..हा..! गजब भाई! धर्म की ऐसी व्याख्या होगी! जो अकृत्रिम नहीं,

पर्यायरूप से कराना, ऐसा परमस्वस्वरूप में, परमस्वस्वरूप में, त्रिकाल ध्रुवस्वरूप में, अविचल-चलित न हो, ऐसी स्थिरतारूप, स्थितिरूप परमशुद्ध चारित्रस्वरूप है।

जो नित्य-शुद्ध-निरंजनज्ञानस्वरूप है,... भगवान आत्मा, जैसे यह कारण-उपयोग कहते हैं, कारणदृष्टि कहते हैं, स्वरूपश्रद्धान कहते हैं, परमस्वभावभाव में। और वह समयसारस्वरूप है। उसमें **नित्य-शुद्ध-निरंजनज्ञानस्वरूप है,...** वह तो शाश्वत् निर्मल ऐसा अंजनरहित ज्ञानस्वरूपरूप से स्वयं ऐसा है। देखो, पद्मप्रभमलधारिदेव ने ऐसी टीका की है। वे (अन्य लोग) कहते हैं क्लिष्ट की है। कितनी स्पष्ट है!

मुमुक्षु : बहुत स्पष्ट बात की है।

पूज्य गुरुदेवश्री : -बात करते हैं। यह कहते हैं कि इस टीका के करनेवाले हम तो कौन? गणधर से लेकर ये टीकाएँ चली आती हैं। हम मन्दबुद्धि तो कौन? आहा..हा..! समझ में आया? भगवान परमात्मस्वरूप महाराजा की अन्दर की ऋद्धि का यह वर्णन चलता है।

नित्य-शुद्ध-निरंजनज्ञानस्वरूप है, और जो समस्त दुष्ट पापोंरूप वीर शत्रु सेना की ध्वजा के नाश का कारण है... समस्त दुष्ट पापरूपी वीर शत्रु। सब, हों! पुण्य-पाप सब इकट्ठा। दुश्मनों की सेना की ध्वजा को लूटनेवाला है। लूटनेवाला अर्थात् उसके स्वभाव में वे हैं नहीं। उस स्वभाव का आश्रय ले, उसके इस पाप का नाश हुए बिना नहीं रहता। आहा..हा..! **समस्त दुष्ट पापोंरूप वीर...** पापरूप वीर की-इसके शत्रु की सेना, उसके नाश का कारण। **ऐसे आत्मा के यथार्थ...** ऐसा जो आत्मा, यह सब होकर कहा वह। उसका **यथार्थ स्वरूपश्रद्धानमात्र ही है...** ऐसे आत्मा का स्वरूपश्रद्धान त्रिकाल है। प्रगट की बात नहीं है। त्रिकाल स्वरूपश्रद्धान **ऐसे आत्मा के यथार्थ स्वरूपश्रद्धानमात्र ही है...** स्वरूपश्रद्धानमात्र ही है। लो, समझ में आया? **(अर्थात्, कारणदृष्टि तो वास्तव में शुद्धात्मा की स्वरूपश्रद्धामात्र ही है)।** ऊपर से पहले यह आया था न? कारणदृष्टि वहाँ से शुरु किया। पैराग्राफ से। वह कारणदृष्टि वास्तव में शुद्धात्मा के, त्रिकाली शुद्धस्वरूप के श्रद्धास्वरूप, श्रद्धामात्र त्रिकाल ऐसी श्रद्धा अन्दर पड़ी है। नीचे (फुट)नोट एक।

स्वरूपश्रद्धान=स्वरूप अपेक्षा से श्रद्धान। अपना जो त्रिकाली ध्रुवस्वरूप, उसकी श्रद्धा अन्दर में, हों! क्योंकि प्रगट सम्यग्दर्शन हो, उसका कारण भी स्वरूपश्रद्धान त्रिकाल

है। समकित की, धर्म की दशा प्रगट हो, उसका कारणरूप स्वरूपश्रद्धान त्रिकाल है, उसके आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है।

(जिस प्रकार कारणस्वभावज्ञान, (त्रिकाल) अर्थात् सहजज्ञान स्वरूपप्रत्यक्ष है;...) पहले स्वरूपप्रत्यक्ष कहा था न? जैसे ज्ञान स्वरूपप्रत्यक्ष है, त्रिकाल, हों! जैसे त्रिकाल ज्ञान अन्दर स्वरूपप्रत्यक्ष ही है। ***(उसी प्रकार कारणस्वभावदृष्टि, अर्थात् सहजदर्शन स्वरूपश्रद्धानमात्र ही है।)*** सहजदर्शन कहो या स्वरूपश्रद्धानमात्र, ऐसे दो इकट्ठे डाले न! कहो, समझ में आया इसमें? पहले स्वरूपप्रत्यक्ष कह गये थे। कारणस्वरूप प्रत्यक्ष है, ऐसा कह गये थे। अर्थात् क्या? कि त्रिकाल आत्मा जो है, उसका ज्ञान अन्दर, वह स्वरूप प्रत्यक्ष ही है। अपने स्वयं के आश्रय से प्रत्यक्ष है। उसे किसी की अपेक्षा नहीं है। जैसे वह स्वरूप प्रत्यक्ष ज्ञान भी त्रिकाल है, वैसे स्वरूपश्रद्धानमात्र भी त्रिकाल है। जैसे स्वरूपज्ञान की अपेक्षा से स्वरूपप्रत्यक्ष कहा तो यहाँ दर्शन की अपेक्षा से अथवा श्रद्धा की अपेक्षा से स्वरूपश्रद्धान कहा। बस।

अरे! चीज़ कितनी पड़ी है! लोग स्वाध्याय करते नहीं, पढ़ते नहीं, मनन करते नहीं। ऐसे का ऐसा बाहर का अकेला यह पालो, यह पालो, और यह पालन करो। पाला डालकर अन्दर पड़े हैं। पाला-पाला, यह धूल का पाला खेत में नहीं डालते? पानी भरा रहे। वैसे पाला डाले हैं। सच्चा समझना एक ओर रख दिया। आहा..हा..! कहो, समझ में आया?

(जिस प्रकार कारणस्वभावज्ञान, अर्थात् सहजज्ञान स्वरूपप्रत्यक्ष है; उसी प्रकार कारणस्वभावदृष्टि, (त्रिकाल) अर्थात् सहजदर्शन स्वरूपश्रद्धानमात्र ही है।) कहो, समझ में आया? यह त्रिकाल कारणदृष्टि, स्वरूपश्रद्धान त्रिकाल दर्शनोपयोग, उसे किस भाव से यहाँ कहा? परमपारिणामिकभाव से कहा। तुम्हें नहीं पूछा। त्रिकाल परमपारिणामिकभाव से कहा। कारणदर्शनोपयोग त्रिकाल, कारणस्वरूप दृष्टि या कारणदृष्टि या कारणस्वरूप श्रद्धान, वह सब परमपारिणामिकभाव से है। सहज कहा था न? ऊपर आ गया। **ऐसा सहज-परमपारिणामिकभावरूप जिसका स्वभाव है;...** पहली लाईन। बहुत भर दिया है। उसका अन्तरस्वभाव ऐसा है, उसका आश्रय करे तो धर्म हो; बाकी कोई देह की क्रिया या दया, दान, व्रत की क्रिया से धर्म-वर्म है नहीं - ऐसा सिद्ध करना है। आहा..हा..! समझ में आया? यह कारण की व्याख्या की।

जैसे ज्ञान में कारस्वरूप में स्वरूपप्रत्यक्ष कहा था, वैसे यहाँ कारणदर्शनोपयोग में स्वरूपश्रद्धान और स्वरूपकारणदृष्टि सिद्ध की। अब कार्य। पहले कारणदृष्टि थी और उसके सामने कार्यदृष्टि। देखो! यहाँ दृष्टि दर्शनोपयोग को भी दृष्टि कहने में आता है और क्षायिक समकित को भी दृष्टि कहने में आता है और स्वरूपश्रद्धान में से प्रगट हुई समकित दशा को भी कार्यदृष्टि कहने में आता है। परन्तु यह कार्यदृष्टि पूर्ण दर्शन की अभी व्याख्या है।

दर्शनावरणीय-ज्ञानावरणीयादि घातिकर्मों के क्षय से उत्पन्न होती है। कार्यदृष्टि कैसे होती है? आत्मा में केवलदर्शन और केवलज्ञान और स्वरूपदृष्टि पूरी प्रगट बाहर में, हों! वह कैसे होती है? वह **दर्शनावरणीय-ज्ञानावरणीयादि घातिकर्मों के क्षय से उत्पन्न होती है।** इन चार कर्म का नाश होने से यह कार्यदृष्टि प्रगट होती है। दर्शनोपयोग, कार्य-उपयोग तब प्रगट होता है, ऐसा कहते हैं। ज्ञानावरणीय शामिल ले लिया है क्योंकि वह साथ ही है न। सामने पुस्तक है। किस शब्द का अर्थ होता है, उसका जरा ख्याल आवे ऐसा है।

कार्यदृष्टि अर्थात् केवलदृष्टि। केवलज्ञान के साथ रहा हुआ प्रगट केवलदर्शनोपयोग, वह चार घातिकर्म के क्षय से उत्पन्न होता है। लो, ठीक। वरना तो कार्यदृष्टि तो दर्शन-उपयोग के आश्रय से प्रगट होती है। दर्शनावरणीय कर्म के नाश से प्रगट होती है परन्तु सब साथ में लेना है न? समझ में आया? उसमें आया था न? 'चैतन्य अनुविधायीपरिणाम, उपयोग' आत्मा वस्तु, उसमें चैतन्यगुण, उसे अनुसरकर होनेवाला उपयोग। वह चैतन्य सामान्य और विशेष गुण दोनों वाला, सहित। चैतन्यद्रव्य, उसका सामान्य-विशेषवाला चैतन्य। उसे अनुसरकर होनेवाला ज्ञान और दर्शन का उपयोग। वहाँ इतना लिया था। अकेला उपयोग, उसके आश्रय से। समझ में आया? यहाँ कहते हैं कि ऐसी कार्यदृष्टि, चार कर्म के नाश से (उत्पन्न होती है)। क्योंकि कार्यदृष्टि में दर्शनोपयोग के साथ यह सब होता है। पण्डितजी! बहुत सूक्ष्म।

पहले ऐसा आया था। 'चैतन्य अनुविधायीपरिणाम उपयोगः' यहाँ कार्यदृष्टि को सिद्ध करते हुए, चार घातिकर्म का नाश होकर, ज्ञानोपयोग-दर्शनोपयोग स्वरूपश्रद्धान, पूर्ण क्षायिक दृष्टि इत्यादि चार घाति के नाश से उत्पन्न होते हैं, एक साथ उत्पन्न होते हैं - ऐसा सिद्ध करते हैं। समझ में आया? वरना वहाँ तो ऐसा कहा कि चैतन्य के उपयोग के

आश्रय से अनुसरकर बारह उपयोग हो, तो श्रद्धा के आश्रय से सम्यक्, चारित्र के आश्रय से चारित्र इत्यादि। परन्तु यह गुणभेद न लेकर, यहाँ तो कार्यदृष्टि प्रगट हुई। ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय आदि का क्षय होकर उसके साथ कार्यदृष्टि, कार्य केवलज्ञान इत्यादि साथ में प्रगट हुए हैं। पूर्ण वीर्य, पूर्ण आनन्द। कहो, समझ में आया? मनुभाई! ऐसा सूक्ष्म है यह। घर में पुस्तक रखकर थोड़ा पढ़ना चाहिए कभी-कभी। कभी-कभी, हों! आहा..हा..! कितनी बड़ी ऋद्धि है।

दूसरी, कार्यदृष्टि... ऐसा कहा न? पहली कारणदृष्टि कही थी। अब यह दूसरी कार्यदृष्टि। **दर्शनावरणीय-ज्ञानावरणीयादि घातिकर्मों के क्षय से उत्पन्न...** होती है। यह तो एक निमित्त की बात की। परन्तु कार्यदृष्टि प्रगट होती है तो पूर्ण द्रव्य का आश्रय करके केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनन्त वीर्य, अनन्त आनन्द प्रगट होता है, इसलिए चार घातिकर्म का नाश हो जाता है। समझ में आया? **इस क्षायिक जीव को,...** देखो, इस जीव को ही पर्यायवाला क्षायिक जीव कहा। परमपारिणामिक त्रिकालस्वभाव के आश्रय से जो क्षायिक ज्ञान प्रगट हुआ, उसे यहाँ क्षायिक जीव कहा। समझ में आया? **इस क्षायिक जीव को, जिसने सकलविमल (सर्वथा निर्मल) केवलज्ञान द्वारा तीन भुवन को जाना है;...** आहा.हा..! अन्त में कहेंगे कि क्षायिक जीव को **केवलज्ञान की भाँति, यह (कार्यदृष्टि) भी युगपत् लोकालोक में व्याप्त होनेवाली है।** धीरे-धीरे से तो यह चलता है, भाई!

आत्मा परमस्वभावभाव से भरपूर त्रिकाली तत्त्व है। उसका आश्रय करने से कार्यदृष्टि अथवा दर्शनोपयोग पूर्ण प्रगट होता है। कहते हैं कि उस जीव को कार्यदृष्टि जो प्रगट हुई अथवा कार्य-उपयोग प्रगट हुआ, वह क्षायिक भाव है; इसलिए **क्षायिक जीव को,...** ऐसा (कहा), वह क्षायिक दशा प्रगट हुई, ऐसे जीव को **(कार्यदृष्टि) भी युगपत् लोकालोक में व्याप्त होनेवाली है।** तीर्थंकर का आधार देंगे। आहा..हा..! **सकलविमल (सर्वथा निर्मल) केवलज्ञान द्वारा तीन भुवन को जाना है;...** तीन भुवन शब्द अर्थात् लोक के तीन भाग जाने, ऐसा नहीं, सब जाना है। **निज आत्मा से उत्पन्न होनेवाले परमवीतराग सुखामृत का जो समुद्र है;...** कहते हैं कि क्षायिक जीव को क्या-क्या है और इससे उसे कार्यदृष्टि का क्या कार्य है। यह बात करते हैं। **निज आत्मा से उत्पन्न होनेवाले परमवीतराग सुखामृत का जो समुद्र है;...** आहा..हा..! पहले ज्ञान लिया, (अब) आनन्द

लिया। भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का सागर है, उसमें से प्रगट होता, ऐसा। त्रिकाल आनन्द में से, **निज आत्मा से उत्पन्न होनेवाले...** वह आत्मा भी पूरा लिया। अनन्त गुण का, अन्तरस्वभाव का एक सागर, ऐसे आत्मा से उत्पन्न होनेवाला। वह पर्याय है। वह केवलज्ञान और आनन्द, वह पर्याय की बात है।

परमवीतराग सुखामृत... ओहो..! दुनिया के राग के सुख जहर जैसे (लगते हैं)। वह छूटकर जिसे परम वीतराग सुखामृत का समुद्र उछला है। आहा..हा..! यहाँ जरा पाँच-पचास लाख या दो करोड़-पाँच करोड़ हो जाये तो ऐसा कहे। आहा..! अपने तो झरना इतनी पैसे का आता है। जैसे गड्ढे में से पानी आया करता है। गड्ढे का पानी दिखे दो छालिया क्या कहलाता है? छालिया। गड्ढे में दो छालिया पानी दिखता है। गड्ढा समझते हो? हमारे तो सब वहाँ उमराला में होता है न, इसलिए देखा है। प्यास लगे, वहाँ जायें। महिलाएँ पानी भरती हो तो लाओ पीने का। स्वच्छ पानी मिले न ताजा। गड्ढा में दो छालिया होते हैं परन्तु निकाले तो हजारों छालिया निकला ही करें। उसमें से झरना आया ही करे। ऐसे यह पैसे की आमदनी हो, उसमें झरना आया ही करे। वह धूल का, हों! यहाँ आत्मा में से झरना आया ही करे, ऐसा कहते हैं। वह ऐसा समुद्र है। सुखामृत का सागर। आहा..हा..!

उसे **यह (कार्यदृष्टि) भी युगपत् लोकालोक में व्याप्त होनेवाली है।** ऐसा सिद्ध करना है न? **जो यथाख्यात नामक कार्यशुद्धचारित्रस्वरूप है;...** कार्यजीव कैसे हैं? यहाँ क्षायिक जीव कहा। कार्य जीव उसमें लिया। जीव को कारणजीव और कार्यजीव (कहा है) यहाँ कार्यजीव को क्षायिक जीव कहा है। समझ में आया? इसमें कितना याद रहे? वह तो छह काय की दया पालना, छह काय के पीयर... लिखते हैं न, उस पत्र में? छह काय के ग्वाल, छह काय के पीयर, छह काय के रक्षक। कोई रक्षक नहीं। किसे पाले? आत्मा कहीं पर को पाल सकता होगा? व्यवहार के कथन ऐसे अच्छे लगें। छह काय के ग्वाल, छह काय के ग्वाल। जैसे गायों को उसका ग्वाल रखे न, छह काय के जीव को रखे। रख सकते हैं? फिर दया पालना या नहीं, नहीं रख सके तो? विकल्प आवे कि इस जीव को मैं नहीं मारूँ, परन्तु इससे इस विकल्प के कारण वह बच जाये या उसकी दया पल जाये, ऐसा है नहीं और विकल्प आया, वह भी दया नहीं। अपने आत्मा की वहाँ उतनी हिंसा हुई।

यहाँ तो **यथाख्यात नामक कार्यशुद्धचारित्रस्वरूप है;...** आहा..हा.. ! देखो ! प्रगट की बात है, हों ! **यथाख्यात नामक कार्यशुद्धचारित्रस्वरूप है;...** वह क्षायिक जीव। उसे ऐसी कार्यदृष्टि होती है। समझ में आया ? ऐसी महिमा भी किसी दिन सुनी नहीं होगी, लो। ऐसा आत्मा है और उसकी ऐसी परहावणी अन्दर भरी है। आत्मा है बस एक, लो ! परन्तु क्या आत्मा है। आहा..हा.. !

जो सादि-अनन्त अमूर्त अतीन्द्रियस्वभाववाले शुद्धसद्भूत -व्यवहारनयात्मक है,... कहते हैं, लो। नयस्वरूप है। देखो ! **जो सादि...** केवलदर्शन आदि सादि हुआ न ? नया (हुआ न) ? वह अनन्त काल रहनेवाला है। वह अमूर्त है। क्षायिक जीव अतीन्द्रिय स्वभाववाला है। **शुद्धसद्भूत-व्यवहारनयात्मक है,...** शुद्धसद्भूत-व्यवहारस्वरूप ही है, कहते है लो। भारी टीका, भाई ! वह **शुद्धसद्भूत-व्यवहारनयात्मक है,...** नीचे (अंक फुटनोट में) दो (अंक) है न ? **तीर्थंकरपरमदेव शुद्धसद्भूतव्यवहारनयस्वरूप हैं,...** कार्य है न वह। वह तो व्यवहारनयस्वरूप है। आहा..हा.. ! पर्याय है, वह व्यवहार है। उसकी है; इसलिए सद्भूत है; अंश है, इसलिए व्यवहार है। शुद्धसद्भूतव्यवहारनयस्वरूप भगवान है। तीर्थंकर केवलज्ञानी, केवलदर्शन, वह शुद्धसद्भूतव्यवहारनयस्वरूप है। लो। **कि जो शुद्धसद्भूतव्यवहारनय सादि-अनन्त,...** जब से दशा प्रगट हुई, तब से सादि। **अमूर्तिक और अतीन्द्रियस्वभाववाला है।** वह नय ऐसा है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया इसमें ?

और जो त्रिलोक के भव्यजनों को प्रत्यक्ष वन्दनायोग्य है... सिद्ध भगवान तो परोक्ष हो गये। वे प्रत्यक्ष वन्दनयोग्य नहीं है। ये तो तीर्थंकर समवसमरण में विराजते हैं, कार्यदृष्टिवाले, तीन लोक के भव्यजनों को। देखो, यहाँ तो सबको पूजनीय कहते हैं। कितने ही विरोध करनेवाले होते हैं न ? यह उनकी गिनती यहाँ नहीं है। **त्रिलोक के भव्यजनों को प्रत्यक्ष वन्दनायोग्य है—ऐसे तीर्थंकरपरमदेव को केवलज्ञान की भाँति, यह (कार्यदृष्टि) भी युगपत् लोकालोक में व्याप्त होनेवाली है।** अर्थात् साथ में लोकालोक को देखनेवाली है। एक समय में लोकालोक को देखे, ऐसी उन्हें कार्यदृष्टि प्रगट होती है। वह त्रिकाली ज्ञायकभाव, स्वभावभाव, ध्रुवभाव, पारिणामिकभाव का आश्रय करने से धर्म की शुरुआत से पूर्णता उसके आश्रय से प्रगट होती है, यह यहाँ सिद्ध करना है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)